विज्ञान की प्रक्रियाएँ

डेविड जरनेर मार्टिन

इस लेख में यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि बच्चों के लिए विज्ञान करने का तरीका सीखना अधिक लाभकर है बनिस्बत इसके कि वे दूसरों के द्वारा निकाले या बताए तथ्य, व्यापकीकरण, धारणाएँ, सिद्धान्त और नियम सीखें। अर्थात् बच्चों के लिए विज्ञान के बारे में जानने से बेहतर है कि वे विज्ञान करें। लेकिन विज्ञान करने का अर्थ क्या है? बच्चे 'विज्ञान करने' के लिए दरअसल, करेंगे क्या? इन्हीं प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ने के लिए हम 'विज्ञान की प्रक्रियाओं' पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे।

चित्र: कैरन हेडॉक

विचारों का निर्माण

ज़रा यह करके देखो। कुछ पल रुककर सोचो कि आज स्कूल आते समय तुमने क्या देखा। कुछ चीज़ें नोट कर लो और कक्षा में उनके बारे में चर्चा करो।

तुमने क्या देखा? कक्षा में जब यह प्रश्न पूछा जाता है तो कुछ ऐसे उत्तर मिलते हैं - 'ट्रैफिक', 'सिग्नल',

'बरसात', 'कोहरा' या 'एक दुर्घटना'। पर कई बार बच्चों के लिए यह याद कर पाना मुश्किल होता है कि स्कूल आते समय उन्होंने क्या देखा। ऐसा क्यों जबकि वास्तव में, उन्होंने रास्ते में बहुत कुछ देखा होना चाहिए। यह इसलिए होता है कि हम अक्सर आँखों के सामने के दृश्य पर ध्यान नहीं देते। हमने अपनी प्रेक्षण या अवलोकन कुशलता का विकास नहीं किया। हम अपनी इन्द्रियों के द्वारा अवलोकन करते हैं और अवलोकन ही विज्ञान की एक अत्यन्त मूलभूत प्रक्रिया है।

प्रक्रिया का शाब्दिक अर्थ है "किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले क्रमबद्ध कार्य"। विज्ञान की प्रक्रियाओं का उद्देश्य है किसी परिघटना को समझना, किसी प्रश्न का उत्तर खोजना, किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करना या किसी भी वस्तु के बारे में नई जानकारी खोजना। वैज्ञानिक खोजबीन के लिए निम्न बारह प्रक्रियाएँ महत्वपूर्ण होती हैं:

1. प्रेक्षण या अवलोकन
2. वर्गीकरण
3. संचार
4. मापन
5. भविष्यवाणी करना
6. अनुमान लगाना
7. चर राशियों (variables) की पहचान व उनका नियंत्रण करना
8. अभिकल्पनाएँ (hypothesis) बनाना व उनका परीक्षण करना
9. आँकड़ों (data) की व्याख्या करना
10. संक्रियात्मक परिभाषा बनाना (De-fining operationally)
11. प्रयोग करना
12. मॉडल निर्माण

विज्ञान शिक्षण में 'करके सीखो' प्रक्रिया-पद्धति का इतिहास

सबसे पहले हम इतिहास में झाँककर देखते हैं कि कैसे वैज्ञानिक प्रक्रिया वैज्ञानिक क्रियाकलापों का प्रमुख आधार बनी। बात 1959 के अक्टूबर महीने की है जब सोवियत संघ ने अपने पहले अन्तरिक्ष यान स्पुतनिक का प्रक्षेपण करने में सफलता प्राप्त की। यह बात अमेरिका के लिए बहुत लज्जाजनक थी क्योंकि अमेरिकी वैज्ञानिक कई वर्षों से इस कोशिश में लगे हुए थे पर सोवियत संघ अमेरिका से आगे निकल गया। इस घटना से अमेरिका के वैज्ञानिक, सरकार व जनसाधारण सभी निरुत्साहित हो गए। हर तरफ यह प्रश्न उठने लगा कि ऐसा हुआ कैसे कि इतनी प्रतिभा, तकनीकी कुशलता व धन-संसाधन से सम्पन्न होने के बावजूद अमेरिका अन्तरिक्ष में जाने वाला पहला देश नहीं बन सका? जैसा कि अक्सर होता है सारा दोष शिक्षा प्रणाली के सिर मढ़ा गया। विज्ञान शिक्षण के लिए यह एक निर्णायक मोड़ सिद्ध हुआ।

स्पुतनिक के उड़ान भरने से एक महीने पहले दस दिन का (अब प्रसिद्ध) वुड्स होल सम्मेलन आयोजित किया गया जिसकी अध्यक्षता हार्वर्ड में

मनोविज्ञान के प्रसिद्ध प्रोफेसर जेरोम ब्रूनर ने की। यह सम्मेलन राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के अनुरोध पर किया गया था जो कई वर्षों से अमेरिका में विज्ञान शिक्षण की स्थिति का अध्ययन कर रही थी। सम्मेलन का उद्देश्य "कोई आपातकालीन प्रोग्राम बनाने का नहीं वरन् छात्रों को विज्ञान के तत्व व पद्धति का अनुभव कराने के लिए अपनाई जाने वाली मूलभूत प्रक्रियाओं की जाँच-पड़ताल करना है।" यह सम्मेलन इस दृष्टि से भी अभूतपूर्व था कि इस शिक्षण सम्बन्धी सम्मेलन की अध्यक्षता एक मनोवैज्ञानिक कर रहे थे और इसमें शिक्षाविदों के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक, गणितज्ञ, फिल्मकार और अन्य वैज्ञानिक भी भाग ले रहे थे। इनमें रॉबर्ट गामन, बारबेल इनहेल्डर (ज़्याँ पियाजे के प्रतिनिधि) व बी.एफ. स्किनर भी शामिल थे।

सम्मेलन के सम्मुख यह प्रश्न रखा गया कि "वैज्ञानिक विज्ञान करते कैसे हैं?" वैसे तो इस सम्मेलन के पहले भी प्रक्रियान्मुख विज्ञान शिक्षण पाठ्य-क्रम बनाने के छिटपुट प्रयास किए गए थे पर अधिकांशतः विज्ञान शिक्षण का अर्थ होता था छात्रों को महत्वपूर्ण समझी जाने वाली विज्ञान की शाखाओं (जैसे रसायन, जीव, भौतिक, भू और खगोल विज्ञान) के तथ्यों, सिद्धान्तों, व्यापकीकरणों, धारणाओं व नियमों से अवगत कराना। इन सब का अधिकतर अंश प्रारम्भिक कक्षाओं के छात्रों की समझ से ऊपर था इसलिए विज्ञान का शिक्षण ही थोड़ी ऊँची कक्षाओं पर केन्द्रित था। वुड्स होल सम्मेलन में यह निष्कर्ष निकला कि छात्रों को विज्ञान उसी तरह सीखना चाहिए जैसे वैज्ञानिक उसे करते हैं। रसायन शास्त्र उस तरह सीखना चाहिए जैसे रसायन शास्त्री वास्तव में, अपना कार्य करते हैं। भौतिकशास्त्र उस तरह जैसे भौतिक शास्त्री संसार का अध्ययन करते हैं और जीव विज्ञान उसी प्रकार जैसे जीव विज्ञानी जैविक प्रक्रियाओं का परीक्षण करते हैं।

इन धारणाओं ने विज्ञान-शिक्षण की एक नई, साहसिक पद्धति को जन्म दिया जिसमें विषयवस्तु (content) से अधिक प्रक्रिया पर बल दिया गया था। विज्ञान शिक्षण की यही पद्धति धीरे-धीरे छोटी कक्षाओं में भी उपयोग की जाने लगी और उनके लिए भी नए पाठ्यक्रम बनाए गए। इनमें हर स्तर के छात्रों को प्रोत्साहित किया जाता था कि वे पहले स्वयं अनुमान लगाएँ, फिर प्रयोग करें और उसके आधार पर अवधारणा बनाएँ। यह तरीका पहले वाले उस तरीके से बिलकुल अलग था जिसमें 'प्रयोग' के नाम से जो किया जाता था वह वास्तव में, प्रयोग नहीं वरन् पहले से बताए गए सिद्धान्तों का सत्यापन भर होता था। छात्रों को पहले से बता दिया जाता था कि क्या होना चाहिए।

इसका एक उदाहरण देखते हैं। आप में से बहुत लोगों ने जीव विज्ञान की प्रयोगशाला में विभिन्न खाद्य पदार्थों

चित्र: रणजीत बालमुचु

में आयोडीन डालने का प्रयोग किया होगा। आपको पहले ही बता दिया जाता है कि स्टार्च (मण्ड) की उपस्थिति में आयोडीन का रंग नीला-काला हो जाता है और यह रंग बदलना स्टार्च की उपस्थिति का लक्षण है। आपको यह भी निर्देश दिया गया होगा कि आलू, चीनी, ब्रेड जैसी कुछ चीज़ों पर एक-एक बूंद आयोडीन डालकर देखो कि रंग में क्या परिवर्तन होता है। इसके बाद आपने निष्कर्ष लिखे होंगे जैसे कि आलू व ब्रेड में स्टार्च है। इस प्रयोग में आपने प्रयोग नहीं बल्कि केवल एक ऐसे तथ्य का सत्यापन किया जो किसी और ने पहले ही ढूँढ़ निकाला था।

साठवें दशक की प्रारम्भिक विज्ञान शिक्षण पद्धतियाँ

1960 से शुरू हुई नई पद्धतियों में बच्चों की सक्रिय भागीदारी का प्रावधान था। इनके तहत बच्चों को क्रमबद्ध क्रियाओं के द्वारा कई नई बातें स्वयं सीखने का अवसर दिया गया। इसका उद्‌देश्य था कि वैज्ञानिक प्रक्रिया पर बच्चों की मज़बूत पकड़ हो जाए - वे विज्ञान 'करना' सीखें। बहुत जल्दी इन नई पद्धतियों ने पुरानी तथ्य-प्रधान पद्धतियों का स्थान ले लिया। ऐसा लगने लगा कि अमेरिकी युवाओं के घटते विज्ञान कौशल्य का निदान यही है।[1]

ऐलिमेन्टरी साईंस स्टडी (ESS) प्रारम्भिक कक्षाओं में विज्ञान शिक्षण का एक पाठ्यक्रम था। इसमें ऐसी कई इकाइयाँ बनाई गई थीं जिससे बच्चों में स्वयं खोज करने की वैज्ञानिक प्रक्रिया विकसित की जा सके। इनमें से कुछ थीं: 'बीज उगाना', 'मिलाओ और मापो' और 'प्रारम्भिक सन्तुलन।' कुछ इकाइयाँ थोड़ी बड़ी कक्षाओं के लिए थीं जैसे 'पानी का बहाव', 'नक्शा बनाना' व 'रसोई में भौतिकी'। इन सबमें बच्चे के द्वारा स्वतंत्र रूप से खोज करने पर अधिक बल दिया गया था। शिक्षक की भूमिका थी कि वह इस खोजबीन में बच्चे की आवश्यकता,

[1] *इन नए पाठ्यक्रमों में मुख्य थे: Elementary Science Study (ESS), Science Curriculum Improvement Study (SCIS) तथा Science, A Process Approach (SAPA).*

रुचि व क्षमता को ध्यान में रखते हुए उसकी सहायता करे। यह सब करने के लिए शिक्षकों के लिए मार्गदर्शिकाएँ भी बनाई गई थीं।

SCIS कार्यक्रम डॉ. रॉबर्ट कारप्लुस के द्वारा विकसित किया गया था। वे कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी, बर्कले में सैद्धान्तिक भौतिक शास्त्र के प्रोफेसर थे और अपनी बेटी व अन्य छात्रों को प्रारम्भिक कक्षाओं में मिलने वाले विज्ञान शिक्षण से बिलकुल भी सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने विज्ञान शिक्षण का जिज्ञासा-आधारित ऐसा तरीका अपनाया जिसमें बच्चों को स्वयं अवलोकन करने व उन प्रेक्षणों के आधार पर अपने निष्कर्ष निकालने के लिए प्रोत्साहित किया गया। कारप्लुस ने बच्चों की जिज्ञासाओं और प्रश्नों के समाधान के लिए शिक्षक-मार्गदर्शन हेतु एक पद्धति का भी विकास किया। इस पद्धति में तीन चरण होते हैं,

1. खोज व छानबीन (Exploration)
2. अवधारणा बनाना व समझाना (Concept explanation and concept invention)
3. खोज (Discovering)।

इस तरीके में शिक्षक छात्रों के सामने कोई एक अवधारणा प्रस्तुत करता है। छात्र पहले स्वयं उसकी छानबीन करते हैं। इसमें शिक्षक की भूमिका छात्रों का काम सहज करने की होती है, निर्देशित करने की नहीं। इसके बाद छात्रों की खोज को उपलब्ध वैज्ञानिक तथ्यों के साथ मिलाकर अवधारणा बनाई व समझाई जाती है। यह कार्य शिक्षक के निर्देशन में होता है। इस चरण में शिक्षक अपनी पारम्परिक भूमिका में छात्रों को स्थापित वैज्ञानिक अवधारणाओं से अवगत कराता है और छात्र अपने निष्कर्षों की तुलना पूर्व-स्थापित सिद्धान्तों से करते हैं। इसके उपरान्त छात्रों को प्रोत्साहित किया जाता है कि वे उस अवधारणा से सम्बन्धित और प्रश्नों व परिस्थितियों के बारे में सोच-विचार करें। इस चरण

चित्र: रणजीत बालमुचु

में शिक्षक की भूमिका फिर से निर्देशक की बजाय सहयोगी की हो जाती है। इस तीसरे चरण का अन्त किसी नई अवधारणा के अध्ययन की शुरुआत से होता है। इस तरह यह चक्र चलता जाता है। आजकल यह अध्ययन-चक्र कई रूपों में उपलब्ध है, कुछ में उपरोक्त तीन चरणों के अलावा बच्चों के मूल्यांकन का एक चरण भी होता है।

साइंस - ए प्रोसेस अप्रोच, प्रक्रिया-कौशल्य के क्रमबद्ध विकास पर केन्द्रित थी। इसमें वैज्ञानिक अवधारणाओं का उपयोग एक साधन के रूप में किया गया था जिसकी सहायता से बच्चों को प्रक्रियाओं का ज्ञान कराया जा सके। इसलिए इसमें तथ्यपरक ज्ञान को कम महत्व दिया गया था। यह पद्धति अत्यन्त व्यवस्थित थी। शिक्षक छात्रों को प्रक्रिया-मूलक क्रियाओं से एक निश्चित क्रम में अवगत कराते थे। यह क्रम सरल से आरम्भ होकर क्रमशः जटिल क्रियाओं तक जाता था। इसमें उपयोग की गई क्रियाओं में बच्चों की सक्रिय भागीदारी रहती थी अर्थात् बच्चे वास्तव में, विज्ञान कर रहे थे। इस प्रोग्राम का प्राथमिक उद्देश्य बच्चों को विज्ञान करने व विज्ञान सम्बन्धी प्रश्नों का हल उसी तरह ढूँढ़ने के लिए तैयार करना था जिस प्रकार वैज्ञानिक अपना कार्य करते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि ये सभी नए पाठ्यक्रम सफल क्यों नहीं हुए? क्यों परिस्थितियाँ अभी भी वैसी ही हैं जैसी साठ के दशक में थीं?

यह एक जटिल प्रश्न है जिसका कोई सरल उत्तर नहीं है। इन कार्यक्रमों की असफलता के कई कारक थे। इनमें से एक था शिक्षकों का योगदान (commitment)। बहुधा, शिक्षकों को सिर्फ नया कार्यक्रम देकर अपनी शिक्षण-पद्धति बदलने के लिए कह दिया जाता था। उन्हें नई सामग्री के लिए कोई प्रशिक्षण नहीं दिया जाता था, न ही उन्हें नए पाठ्यक्रम के उद्देश्यों का पता होता था। उन्हें यह भी नहीं बताया जाता था कि नए पाठ्यक्रम को अमल में लाने से क्या उपलब्धि होगी। नए कार्यक्रमों के उपकरण महँगे थे, शिक्षकों को तैयारी में अधिक समय देना पड़ता था। फिर उन्हें यह भी डर था कि बच्चों को स्वतंत्र रूप से कार्य करने देने से वे (शिक्षक) कक्षा पर अपना नियंत्रण खो देंगे।

यह ध्यान देने की बात है कि उस समय तक कक्षाएँ एक विशिष्ट संरचना लिए होती थीं जिसका केन्द्र बिन्दु शिक्षक था। किसी भी कक्षा में सबसे महत्वपूर्ण स्थान शिक्षक का होता है और यदि शिक्षण पद्धति बदलने में उनकी सलाह व सहमति नहीं ली जाती है तो बहुत सम्भावना है कि वे नई पाठ्यक्रम सामग्री एक तरफ रखकर पुरानी, जानी-पहचानी पाठ्यपुस्तकें ही उपयोग करेंगे। 1960 के दशक के 'करके-सीखो' कार्यक्रमों के साथ भी ऐसा ही हुआ।

साथ ही, शिक्षकों को यह भी लगता था कि उन्हें विद्यालय प्रबन्धन को भी

सन्तुष्ट और प्रसन्न रखना है। यह पाया गया कि जिन विद्यालयों में विद्यालय प्रबन्धन तथ्यपरक ज्ञान पर बल देता था वहाँ के शिक्षक ऐसी शिक्षण पद्धति अपनाने से कतराते थे जिसमें विषयवस्तु का महत्व कम हो। इस सबका दुःखद परिणाम यह हुआ कि ये नए पाठ्यक्रम त्याग दिए गए। पर अब हम फिर से देखते हैं कि क्या ये पाठ्यक्रम वास्तव में असफल थे? श्यामान्स्की, काइल और एलपोर्ट ने 1982 में एक सर्वेक्षण किया। उन्होंने इन तीनों कार्यक्रमों पर पूर्व में किए गए अध्ययनों के आँकड़े इकट्ठा किए और उन्हें एक साथ विश्लेषित किया। उन्होंने इन कार्यक्रमों में शिक्षित हुए छात्रों के प्रदर्शन (परफोर्मेंस) की तुलना पारम्परिक पाठ्यक्रमों के छात्रों से की। यह तुलना छः क्षेत्रों में की गईः उपलब्धि, दृष्टिकोण, प्रक्रिया-कौशल्य, सम्बन्धित अन्य विधाओं में कुशलता, रचनात्मकता और पियाजे क्रियाओं का प्रदर्शन। इस अध्ययन से उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि -

"जब इस अध्ययन के सम्मिलित परिणामों पर विचार किया गया तो यह पाया गया कि नए पाठ्यक्रमों में शिक्षित छात्रों ने हर आधार पर पारम्परिक पाठ्यक्रमों के छात्रों से बेहतर परिणाम दिए। ...तीनों नए कार्यक्रमों के किसी औसत छात्र की उपलब्धि पारम्परिक कक्षा के 62 प्रतिशत छात्रों से बेहतर रही अर्थात् नए पाठ्यक्रमों से 12 परसेंटाइल की वृद्धि मिली।"

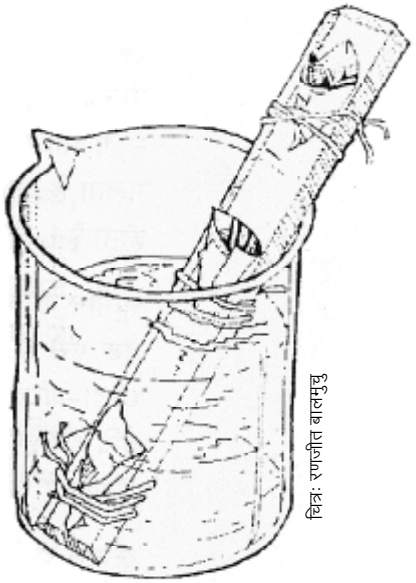

चित्रः रणजीत बालमुचु

समय के साथ शिक्षाविदों ने भी वैज्ञानिकों की कार्यप्रणाली का विश्लेषण करना शुरू किया जिसके फलस्वरूप विज्ञान की प्रक्रियाओं की बेहतर पहचान होने लगी।

क्योंकि वैज्ञानिक उद्यम का निर्माण प्रक्रिया रूपी ईंटों से होता है अतः यह तर्कसंगत लगता है कि बच्चों में इस कुशलता का विकास आवश्यक है। वैज्ञानिक तथ्य, नियम, सिद्धान्त आदि वे साधन हैं जिनका उपयोग कर बच्चे प्रक्रिया-कौशल्य प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरण के लिए प्रेक्षण या अवलोकन की प्रक्रिया सीखने के लिए पौधे, पशु या पत्थर किसी का भी उपयोग किया जा सकता है। वर्गीकरण की प्रक्रिया

पत्तियों, ऋतु चित्रों, सीपियों या खनिजों की सहायता से सीखी जा सकती है। इस विधि में बच्चे अपनी वैज्ञानिक खोज का निष्कर्ष निकालते हैं, वे अपने परीक्षण में उपयुक्त वस्तुओं का मापन करते हैं, वे यह पूर्वानुमान करते हैं कि यदि पौधों को प्रकाश से वंचित रखा जाए तो क्या होगा और वे यह भी अनुमान लगाते हैं कि मृदा में विभिन्न प्रकार के घटक क्यों होते हैं।

अन्त में, इस लेख के मूल में यही विचार है कि बच्चों के लिए तथ्यों को जानने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है प्रक्रिया में कुशलता प्राप्त करना। विज्ञान के बारे में जानने से अधिक आवश्यक यह है कि वे विज्ञान करें।

डेविड जरनेर मार्टिन: विज्ञान शिक्षण में पढ़ाई करने के बाद अमरीका में केनेसा स्टेट यूनिवर्सिटी में पढ़ा रहे हैं। उन्होंने कई पाठ्य पुस्तकें लिखी हैं।

ऐलिमेंट्री सायंस मेथड्स, प्रकाशकः वेड्स वर्थ, थामसन लर्निंग 2000 से साभार।
लेख इस किताब के पहले भाग - 'प्राथमिक विज्ञान कार्यक्रम की संरचना' के पहले अध्याय 'विज्ञान शिक्षण की अनिवार्यताएँ' से लिया गया है ।

अँग्रेज़ी से अनुवादः रमा चारीः राजा रमन्ना सेंटर फॉर एडवांस्ड टेक्नॉलॉजी, इन्दौर से सम्बद्ध हैं। विज्ञान शिक्षण व अनुवाद में रुचि।

चित्रों का स्रोतः बाल वैज्ञानिक, कक्षा छठवीं व आठवीं। प्रकाशकः एकलव्य।

इसी विषय से सम्बन्धित डेविड जरनेर मार्टिन के अन्य लेखों के लिए पढ़ें :
'सही जवाब - गलत जवाब' संदर्भ, अंक 54
'ज्ञान और विचारों का स्वामित्व' अंक 60